

ललमनियाँ



मैत्रेयी पुष्पा



किताब घर
नयी दिल्ली-110002

क्रम

फैसला / 7
सिस्टर / 21
संध / 35
अब फूल नहीं खिलते... / 49
रिजक / 65
बोझ / 81
पगला गयी है भागवती! / 97
छाँह / 105
तुम किसकी हो बिन्नी ? / 119
ललमनियाँ / 137

फैसला

आदरणीय मास्साब,

सादर प्रणाम!

शायद आपने सुन लिया हो। न सुना होगा तो सुन लेंगे। मेरा पत्र तो आज से तीन दिन बाद मिल जाएगा आपको।

चुनाव परिणाम घोषित हो गया।

न जाने कैसे घटित हो गया ऐसा?

आज भी ठीक उस दिन की तरह चकित रह गयी मैं, जैसे जब रह गयी थी— अपनी जीत के दिन। कभी सोचा न था कि मैं प्रधान-पद के लिए चुनी जा सकती हूँ। कैसे मिल गये इतने वोट?

गाँव में पार्टीबन्दी थी। विरोध था। फिर...?

बाद में कारण समझ में आ गया था, जब मैंने सारी औरतों को एक ही भाव से आह्लादित देखा। उमंगों-तरंगों का भीतरी आलोड़न चेहरों पर छलक रहा था।

ब्लाक प्रमुख की पत्नी होने के नाते घर-घर जाकर अपनी बहनों का धन्यवाद करना जब सम्भव नहीं हो सका तो मैं 'पथनवारे' में जा पहुँची।

आप जानते तो हैं कि हर गाँव में पथनवारा एक तरह से महिला बैठकी का सुरक्षित स्थान होता है। गोबर-मिट्टी से सने हाथों, कंडा थापते समय, औरतें अकसर आपबीती भी एक-दूसरे को सुना लेती हैं।

हमारे सुख-दुःखों की सर्वसाक्षी है यह जगह।

वैसे मेरा पथनवारे में जाना अब शोभनीय नहीं माना जाता।

रनवीर ने पहले ही कह दिया था कि गाँव की अन्य औरतों की तरह अब तुम सिर पर डलिया-तसला धरे नहीं सोहतीं। आखिर प्रधान की पत्नी हो।

वे प्रमुख बने तो बंदिशों में कुछ और कसावट आ गयी। और जब मैं स्वयं प्रधान बन गयी तो उनकी प्रतिष्ठा कई-कई गुना ऊँचे चढ़ गयी।

वे उदार और आधुनिक व्यक्तित्व के स्वामी माने जाने लगे। अन्य गाँवों की निगाहों में हमारा गाँव अधिक ऊँचा हो गया। और मैं गाँव की औरतों से दूरी बनाये रखने की हिदायत तले दबने लगी।

पर मेरा मन नहीं मानता था, किसी न किसी बहाने पहुँच ही जाती उन लोगों के बीच।

रनवीर कहते थे, अभी तुम्हारी राजनैतिक उम्र कम है, वसुमती। परिपक्वता आएगी तो स्वयं चल निकलोगी मान-सम्मान बचाकर।

ईसुरिया बकरियों का रेवड़ हाँकती हुई उधर ही आ निकली थी, आप जानते होंगे, मैंने जिद तो किया था उसका कि वह कितनी निश्चल, कितनी मुखर है।

यह भी बताया था कि मैं और वह इस गाँव में एक दिन ही ब्याहकर आये थे।

आप हँस पड़े थे मास्साब, यह कहते हुए कि नेह भी लगाया तो गड़रिया की बहू से! वाह वसुमती!

बड़ी चौकीती नजर है उसकी। जब तक मैंने घूँघट उलटकर गाँव के रूख-पेड़ों, घर-मकानों, गली-मोहल्लों को निहारा ही था, तब तक उसने हर द्वार-देहरी की पहचान कर ली। हर आदमी को नाप-जोख लिया। शरमाना-सकुचाना नहीं है न उसके स्वभाव में।

गाँव के बड़े-बुजुर्गों के नाम इस तरह लेती है, जैसे वह उनकी पुरखिन हो। ऊँच-नीच, नाते-रिश्ते, जात-कुजात के आडम्बरों से सर्वथा मुक्त है।

वह खड़ी-खड़ी आवाज मारने लगी, "ओ बसुमतियाऽऽ...! रन्ना की! रनवीर की दुलहन! ओ पिरमुखिनी!"

सब हँस पड़ीं।

बोली, "वसुमती, लो आ गयी सबकी अम्मा दादी! टेर रही हैं तुम्हें। हुंकारा दो प्रधान जी।"

वह हाथ में पकड़ी पतली संटी फटकारती, बकरियों को पिछियाती हुई हमारे पास ही आ गयी।

झमककर बोली, "पिरधान हो गयीं अब तौ! चलो सुख हो गया।"

किसी ने खास ध्यान नहीं दिया।

संटी उठाकर जोर से बोलने लगी, "एऽऽ, सब जनी सुनो, सुन लो कान खोलकें! बरोबरी का जमाना आ गया। अब ठठरी बँधे मरद माराकूटी करें, गारी-गरौज दें, मायके न भेजें, पीहर से रुपइया पइसा मँगवावें, क्या कहते हैं कि दायजे के पीछें सतावें, तो बैन सूधी चली जाना बसुमती के ढिग।

"लिखवा देना कागद।

"करवा देना नदुओं के जेहल।

"ओ बसुमतिया! तू रनवीरा की तरह अन्याय तो नहीं करेगी? कागद दाब तो नहीं लेगी?"

सलिगा ने हमारे हाथ-पाँव तोरे, तो हमने लीलो के लड़का से तुरन्त कागद लिखवाया था कि सिरकार दरबार हमारी गुहार सुनें।

रनवीर को हमने खुद पकड़ाया था जाकर।

उन दिनों सलिगा हल-हल काँपने लगा था। हाथ तो क्या, उलटी-सूधी जुबान तक नहीं बोल पाया कई दिनों तक। हमारे जानें रन्ना ने कागद दाब लिया सलिगा सेर बनकें चढ़ा आया छाती पर।

बोला, "जेहल करा रही थी हमारी? हत्यारी, हमने भी सोच लई है कि चाहे दो बकरियाँ बँचनी पड़ें, पर तेरे कागद की ऐसी-तैसी..."

संटी फँककर ईसुरिया ने अपनी बाँहें फैला दीं। सलूका उधाड़ दिया, गहरी खरोचों और घावों को देखकर सखियों के होंठ उदास हो गये। खिलते चेहरों पर पाला पड़ गया, मास्साब! हँसी-दिल्लगी ठिठुरकर टूँठ हो गयी!

गोपी ने हँसने का उपक्रम किया।

मुस्कराने का अभिनय करती हुई बोली, "क्या बक रही है तू? कोई सुन लेगा तो कह न देगा पिरमुख जी से?"

वह तुरन्त दयनीयता से उभर आयी।

"सुन ले! सुनाने के लिए ही कह रहे हैं हम। रनवीर एक दिन चाखी पीसेगा, रोटी थापेगा। और हमारी बसुमती, कागद लिखेगी, हुकुम चलाएगी, राज करेगी।

"है न बसुमती?

"साँची कहना, तू ग्यारह किलास पढ़ी है न? और रनवीर नौ फेल? बताओ कौन हुसियार हुआ?

"अब दिन गये कि जनी गूंगी-बहरी छिरिया बकरिया की नाई हँकती रहे। बरोबरी का जमाना ठहरा। पिरधान बन गयी न बसुमती? इन्द्रा गाँधी का राज है। बोलो इन्द्रा गाँधी की जै।"

गोपी डपटने लगी, "सिरिन, इन्द्रा गाँधी तो कब की मर चुकी। राजीव गाँधी का राज है।"

"मर गयीं?

"चलो, तो भी क्या हुआ। मतारी बेटा में कोई भेद होता है सो? एक ही बात ठहरी।

"क्यों जी, झल्लूस कब निकलेगा?" उसे सहसा याद हो पड़ा।

"रन्ना पिरधान बना था तब कैसी रौनक लगी थी। माला पहरायीं थीं। झंडा लेकर चले थे लोग। रन्ना ने तो कंधा-कंधा चढ़कें परिकम्मा की थी गाँव की?"

सरूपी ने उसे फिर समझाया, "ओ बौड़म रन्ना-रन्ना करे जा रही है? पिरमुख जी सबसे पहले तेरी जेहल कराएंगे!"

उसने लापरवाही से सिर झटका, "लो, सुन लो सरूपिया की बातें! रन्ना क्या, तेरा ससुर गजराज भी नहीं कर सकता हमारी जेहल। तेरा जेट पन्ना भी नहीं कर सकता। है न बसुमती!"

झुंड में से कोई बोल पड़ी, "काहे को मुँह लगती हो इस सरगपताल के। ओ ईसुरिया, तेरी छिरियाँ, वे निकल गयीं खेत में।"

"ओ मोरी दइया...!" वह संटी फटकारती दौड़ने लगी।

सवरे की घाम रसोई के ओटले पर रही होगी। चूल्हा जलाकर मैंने तवा रखा ही था। हाथ आटे में सने थे।

कोई छाया-सी द्वार पर दिखी।

सही अनुमान लगाती, तब तक तो आवाज आने लगी, "ओ बसुमतीSS! बसुमतियाSS!"

ईसुरिया थी।

"पंचायती चौतरे पर दुरगा बैठा है! पन्ना देख रहा है! तेरी सौं बसुमती, सारे पंच तेरी परतिच्छा में!" वह खुशी से खिल रही थी।

मैंने तुरन्त कुसुमा को बुलाया। वह बोली, "तुम जाओ भाभी, हम बना देंगे रोटी।"

सभा में जाने लगी तो औरतें किवाड़ों की झिरी से झाँकने लगीं। शायद यह देखने के लिए कि मैं घूँघट डालकर जा रही हूँ या पर्दा त्यागकर।

माथे तक साड़ी का किनारा। न घूँघट था न खुला चेहरा।

रास्ते में गोपी मिल गयी। ईसुरिया को छेड़ने लगी, "बसुमती भाभी तो सभा में जा रही हैं, तू कहाँ जा रही है ईसुरिया?"

वह तमक गयी, "चल! गोपिया की बच्ची! हम बसुमती के सेकटरी उहरे। सभा में जा रहे हैं। पंचों को टोकते नहीं हैं।"

"छिरियाँ कहाँ गयीं आज?"

"छिरियाँ चराने सलिगा चला गया। जान गया अब, कि मरद और औरत बरोबर हो गये, बेटा, अब चलो छिरियाँ चुगाने।

हम चबूतरे के समीप पहुँचने ही वाले थे कि रनवीर आते दिखाई दिये।

वे लपकते कदमों से हमारे पास आकर रुके। मुख पर आश्चर्य की रेखाएँ थीं और नाक तथा होंठ कठोर मुद्रा में अकड़े हुए।

बोले, "कहाँ?"

उत्तर ईसुरिया ने दिया, "पिरमुख जी, हम पंचायत में जा रहे हैं। अगाई छोड़ो। रस्ता दो।"

उसके कहे वाक्यों को सुनकर वे मुझसे मुखातिब हुए, "घर चलो तुम।"

ईसुरिया मुँह बाएँ खड़ी रह गयी। कुछ ही क्षणों में सम्मलकर बोली, "टोका-टाकी न करो पिरमुख जी। चलने दो हमें।"

रनवीर की तयोरियाँ झुलस आयीं।

"सुन नहीं रही बसुमती तुम?"

उनकी आग्नेय दृष्टि मेरे पाँवों को जलाने लगी। उमंग गतिहीन हो गयी।

ईसुरिया अड़ी खड़ी थी। उसकी ओर मैंने समझदार संकेत किया कि लौट चलने में ही मंगल है।

उसने मुझे विचित्र भाव से घूरा और विवश भाव से मेरे पीछे-पीछे खिचड़ आयी।

लौटकर मैं बर्तन समेटने लगी। कुसुमा के अनकहे प्रश्नों का उत्तर मेरे पास नहीं था। घुटन ज्यों की त्यों ठहरी हुई थी सीने में।

ईसुरिया आँगन में बैठी बड़बड़ा रही थी, "लो, हद्द हो गयी कि नहीं? होवा पर तो बसुमती और राज करे रनवीर! अरे अपनी पिरमुखी सम्भारें। पिरधानी से अब इन्हें क्या मतलब?"

कुसुमा से नहीं रहा गया, "मतबल कैसे नहीं है? रामकिसुन कुम्हार से रुइपया वसूल करने हैं। बनीसिंह को बचन दे रखा होगा। भाभी जाती, तो क्या मालूम उलटा हो जाता फैसला।"

बेचारे रामकिसुन ने छान-छप्पर के कारण अपना बैल बेच डाला था कि बिन छत के कैसे रहे चौड़े में। बनीसिंह राच्छत, पहले तो बैल खरीद ले गया और खलिहान उठाते ही आ गया लौटाने। कहता है यह मरघिल्ला बैल उसे नहीं चाहिए। लौटाओ रुपइया।

अब कहाँ से आवें रुपइया? छान बेच दे क्या? छान बिकती है क्या? कौन करे न्याय?

रनवीर तो गरीब को ही मारेंगे। तुम चली जातीं तो बच जाता कुम्हार का।

ईसुरिया भारी कदमों से लौट गयी अपने घर।

मास्साब, मेरी आत्मा में किरचें चुभती रह गयीं।

लौटकर रनवीर ने खूब समझाया था, "पंचायती चबूतरे पर बैठती तुम शोभा देती हो? लाज-लिहाज मत उतारो। कुल-परम्परा का ख्याल भी नहीं रंहा तुम्हें? औरत की गरिमा आद-मर्यादा से ही है। फिर तुम क्या जानो गाँव में कैसे-कैसे धूर्त हैं?"

उस दिन के बाद पंचायती चबूतरे से प्रधान की टेर निरन्तर उठती रही। लोग जानते थे कि रनवीर इस बात को पसन्द नहीं करते, फिर भी बुलाने चले आते।

मैं ही पस्तहिम्मत थी या कि पति की प्रतिच्छाया मेरे भीतर निवास करती थी, देहरी उलौंघते ही कोई बरजने लगता, "हम हैं तो सही। अब तक भी तो करते रहे हैं। तुम्हें

क्या जरूरत है बाहर आने की?"

उत्तर में मन उफनता। आक्रोश के सवाल की सीमा तक होंठ खुलते, मगर पत्नी होने के नाते सब कुछ सिराने लगता। दूध के झाग-सा बैठ जाता विरोध।

मास्साब, मैंने कितने दिनों तक सोचा था कि दस्तखत नहीं करूँगी। करने दो मनमानी। रनवीर रजिस्टर लिये चारपाई पर बैठे थे। मैं कामों में उलझी थी। सवरे का समय वैसे भी खाने-पीने से लेकर दूध-घी की सार-सम्भाल में निकल जाता है, ऊपर से मईदारों का कलेऊ-पानी।

वे आवाज दे चुके थे, शायद कई बार।

मैं फिर भी खाली नहीं हुई।

"सुनो मैं लिखत-पढ़त कब का निबटा चुका, तुम्हें दस्तखत करने का समय नहीं?"

मैं नहीं पहुँची।

वे झल्ला उठे, "कब तक बैठा रहूँ? ब्लाक पहुँचना है मुझे। एक हफ्ते से घुमा रही हो।"

धोती के पल्ले से हाथ पोंछती पहुँच गयी मैं। उनके निकट जा खड़ी हुई।

"लो करो दस्तखत" उन्होंने खुला पैना पकड़ा दिया।

"तुम सोच क्या रही हो? अभी तक तो बीस बार कर चुकी होती।"

मैंने खुला पैना बन्द कर दिया।

आँखों में सवाल का जंगल उग आया। मटकती रही मैं। क्या रनवीर उबार नहीं सकते मुझे? आसपास से नुकीले काँटे यों ही छेदते रहेंगे?

रनवीर इसी तरह चले होंगे अपने प्रधान काल में, या किसी दूसरी तरह। पूछना तो चाहिए न, शायद कोई मार्ग...

रनवीर?

वे मुख खोले देखते रहे।

मजूर आये थे मेरे पास, कहते थे कि अभी तक गारा-पत्थरों की दुलाई की मजदूरी...?

गाँव की औरतें ताना देती हैं, कि भली हुई तुम प्रधान, अपने द्वारे पर ही पक्का खरंजा करा लिया। अपनी गली ही पत्थरों से जड़ ली। हमसे क्या बैर था बहन कि कीचड़ में ही छोड़ दिये।

बच्चों को स्कूल भेजते डर लगता है, छत आज गिरी कि कल। आपके अलावा कौन सुधरवा सकता है उसे।

कौन कहेगा कि यह पिरमुख का गाँव है? गड्ढों में पानी, पानी में मच्छर। कूड़ा-कचरा। घर-घर जूड़ी ताप। कुछ दवा-दारू होती। गड्ढों की पुराई, जैसे लालपुर में।

"कुछ भी तो नहीं हुआ जवाहर रोजगार योजना के पैसे से?"

रनवीर की आँखें फेलती चली गयीं।

दृष्टि धीरे-धीरे खौलने लगी।

उनके चक्षुओं से ऐसे अग्निबाण बरसने लगे कि मैं खड़ी-खड़ी भस्म होने लगी।

मास्साब, मेरे बोल तपते तपते पर पड़े छींटों की तरह जलने लगे।

"गाँव की औरतें कह रही थीं या तुम?"

"ये गाँव की औरतें कब से बोलने लगीं?"

"प्रधान के कर्तव्य और अधिकार वाली पुस्तिका रटी है क्या?"

"तुम प्रधान हो कि एम.एल.ए.?"

उनके चेहरे को विदूष हँसी ने ढाँप लिया।

"च च च...! हमसे तो कभी किसी ने कुछ नहीं पूछा और तुमसे इतने ढेर सवाल?"

रनवीर की भाषा बड़ी तीक्ष्ण थी।

काँपते हाथों से चुपचाप लिख दिया, बसुमती देवी।

दस्तखत!

इस रुपये को जिस दिन हस्ताक्षर करके लायी थी, उन दिनों स्वर्ग के सपनों में विचारा करती थी। चमचमाते स्कूल और पक्की गलियों की चाह थी मन में। वर्षा की रौ में ढहे झोंपड़ों को सँवार देने की आकांक्षा की थी। हाथ पर हाथ धरे बैठे बेरोजगारों के घर दुर्विनों में चूल्हा जलाने की बात सोची थी। बीमारों के दर्द को हरने के लिए कुछ दवा-गोली की साध थी।

'बसुमती देवी' इन छः अक्षरों ने सपनों के घरोंदे का कण-कण आहत कर डाला।

एक वृद्धा ने आ किवाड़ खटखटाया।

"ओ बेटा, बसुमती!"

पानी का घड़ा घड़ोंची पर रखती, तब तक रनवीर का छोटा भाई देववीर जा पहुँचा द्वार पर।

"क्या है दादी?"

"बेटा, तनक अपनी भौजाई को भेज।"

"पंचायत के लिए बुलाने आयी हो क्या?"

"और काहे को लिवा जाएँगे भइया!"

“दादी, जाओ यहाँ से। भइया घर पर नहीं हैं। भाभी नहीं जा सकेंगी।”

“काहे नहीं जा सकेगी? पिरधान नहीं है क्या वह? पंच्यात में तो जाना ही पड़ेगा भइया।”

“तुम लड़ाई करवाओगी हमारे घर में?”

“लड़ाई की क्या बात ठहरी बेटा? जे तो पहले ही सोचनी थी तुम्हें।”

मैं पौर में आ चुकी थी। बूढ़ी अम्मा ने देख लिया। वे पाँवों में गिर पड़ीं, “बेटी बसुमती! लाचारी तो समझ हमारी। फिर हमारे जमाई को छुट्टी नहीं मिलेगी। लाम की नौकरी ठहरी। हमारी बेटी का न्याय-फैसला करवा बहू।”

मैं खड़ी-खड़ी उनकी सुनती रही।

“बेटी, लड़की का दर्द देखा नहीं जाता अब। बाप राच्छत है। चैन से जीना नहीं बदा हमारे भाग में।” कहते-कहते वृद्धा के कोये भीगने लगे। धार बह उठी, झुर्रियों-भरे मुख पर।

क्या करती, कोई चारा न था। सांत्वना थी मेरे पास, सो देती रही, “न्याय मिलेगा अम्मा। भरोसा रखो। पंच अन्याय थोड़ेई करेंगे?”

उस समय न जाने कैसे निर्णय ले डाला कि ठिठके कदम अम्मा के संग चल पड़े। देववीर रोकता रह गया।

फैसला करवाकर आयी तो अपूर्व तोष में भीगी हुई थी। अनाम आर्द्रता और प्रेमिल निष्ठा के साथ लिया निर्णय। पवित्र मन्दिर-सा लगा था पंचायत वाला चबूतरा, जिस पर बैठकर रुके हुए सड़े जल को जैसे काटकर बहा दिया हो मैंने। सम्पूर्ण गन्दगी रिता दी हो अपने हाथों से। अब मानो नई वाटिका का बीजारोपण होगा वहाँ।

रनवीर ने उस रात धीमे से घर में प्रवेश किया। उनका गम्भीर चेहरा दहला देने की हद तक विध्वंसालक हो उठा।

मेरे कलेजे को जैसे कोई खुरों से खूँदने लगा।

सनसनाती निस्तब्ध रात में उनका स्वर धीमे से ही बहा, लेकिन भीतर घुला जहर मुझे आपादमस्तक नहलाता चला गया।

“कचहरी करने का इतना शौक था तो बाप से कहकर वकालत पढ़ ली होती! बार-बार मना करने पर भी...!”

मुझसे जवाब नहीं बना, उनके कहे वाक्य का।

“यह रोज-रोज की नौटंकी! रात-दिन की नाटकबाजी! बताओ कब बन्द करोगी?” रनवीर ने घर के शून्य में विस्फोट किया।

डर के कारण धिग्धी बँधने लगी। लगा कि पूरी देह में कम्पन की लहरें उठ रही हैं।

अनायास ही बोल पड़ी, “मैं अपने आप नहीं गयी थी, अम्मा और उनकी बेटी बुलाने आयी थीं। हरदेई का दुःख कौन नहीं जानता?”

“सबसे ज्यादा तो तुम जानती हो।”

“हरदेई गिड़गिड़ा रही थी, कहती थी कि रनवीर भइया नहीं समझेंगे मेरी पीर। तुम औरत हो भाभी, मेरा दुःख समझो, न्याय करो। पति की लाम की नौकरी है, छुट्टी अब दो साल बाद ही मिल पाएगी, पूरे सात साल निकल गये इसी तरह।

“हमारे दादा तो सोचते हैं कि मुझे भेज दिया तो दामाद एक पैसे का मनीआर्डर नहीं करेगा।

“ताले में बन्द कर देते हैं मुझे। इनसे नहीं मिलने देते। अम्मा किसी तरह खोल दें तो पता चलते ही घर में हड़कम्प? गन्दी-गन्दी गालियाँ।

“तीन बार शहर जाकर खतम कराया है पेट का बच्चा।

“तुमने देखे हैं भाभी, ऐसे पिता?”

“अब की बेर बचा लो। इनके संग भिजवा दो, तुम्हारा जस नहीं भूलूँगी भाभी, जनम-भर। हरदेई रो उठी थी।

“मैंने उसकी गुहार फिर भी नहीं सुनी।

“यही सोचती रही, काश! तुमने फैसला कर दिया होता।”

वे आँखें गाड़कर बोले, “कैसा फैसला? जैसा तुम करके आयी हो? जंगल में रह रही है हरदेई? बेटी आप घर कि बाप घर।

“वह मलटेरिया कहाँ रखेगा उसे?”

“कहीं भी। दोनों में प्रेम है तो क्या घर और क्या बन।”

वे झटके से उठ पड़े, “तो मैं रोक रहा हूँ उसे?”

सारी थरथराहट के बावजूद न जाने कैसे शब्द होंठों से झड़ पड़े, “मैंने तो सुना है कि उसे हाकिमों के पास उनकी हवस पूरी करने को”

“अच्छा?” उनकी जीभ लपेटा खाने लगी।

“तुमने यह नहीं सुना कि उसके नालायक भाई की नौकरी कैसे लगी? तुम्हें यह नहीं बताया कि उसका बाप सीमेंट की दलाली निधड़क किसकी कृपा से कर रहा है, कि पक्का मकान कैसे उठा है? किस हितू की हिमायत पर हो रहे हैं सारे काम?

“मेरा तो उसमें कोई लाभ नहीं?”

“तुम तो सारी कथा जानते हो। फिर क्यों नहीं छुड़ाते उसे, उसके बाप के फन्दे से?”

“तुमने छुड़ा तो दी। मेरे खिलाफ फैसला इस तरह छीछालेदर।”

“मेरा ऐसा इरादा कतई नहीं था।”

“फिर उस दिन कैसा इरादा था, जब रामसिंह को पुलिस पकड़ ले जा रही थी? क्यों भागी थीं पुलिस वैन के पीछे पागलों की तरह। होश खोकर।

“क्या कहते होंगे दरोगा जी? क्या सोचते होंगे लोग? यही कि प्रमुख की पत्नी का ऐसा कंजर तरीका!

“शरम से गड़ गया न मैं।”

“आगे ये नाटक रचे तो समझ लेना कि—”

“सुनो, रामसिंह दोषी नहीं था। निर्दोष को सजा?”

वे क्रोध से काँपने लगे।

“सुन ले! और समझ ले अपनी औकात! मजबूरी में खड़ी करनी पड़ी तू। मैं दो-दो पदवी नहीं रख सकता था एक साथ। सोचा था पत्नी से अधिक भरोसेमन्द कौन।”

उनके चेहरे पर ‘भरोसेमन्द’ शब्द कहते हुए जहरीली हँसी उतर आयी जो मेरे कलेजे में धार करती चली गयी।

वह पूस की ठंडी रात थी। शिला की तरह जमा देने वाला शीत। मैं बाहर ही बैठी रही। ठिटुरन से मुख घुटनों में गाड़ लिया। हाथ-पाँव सुन्न होने लगे थे।

मन बड़ा अस्थिर था। लगा कि इसी समय यह घर, यह गाँव, यह धरती-आसमान त्याग जाऊँ, कहीं चली जाऊँ।

आधी रात निकल गयी होगी।

उसी धुंध में लगा कि परछाईं निकट को सरकती चली आ रही है। पैछर पर चेहरा उठाकर देखा, रनवीर थे।

वे समीप आ बैठे। सिर पर हाथ फेरते हुए मनुहार करने लगे, “चलो भीतर। सोओ चलकर। ठंड बहुत है। कहा मानो।”

घोती झाड़ती हुई मैं बुत की तरह उठ बैठी, अकड़ी हुई-सी।

न विरोध करने की इच्छा हुई, न उलाहना देने की आत्मीयता जागी। अरागात्मक भावना के चलते अपने आप को ढकेलती रही कमरे के भीतर।

वे समझाते रहे, पति-पत्नी में कोई अन्तर होता है? पगली, एक-दूसरे के लिए ही जीते-मरते हैं। गाँव वालों को लेकर विरथा अपने मन में क्लेश पाल बैठी।

हमसे जलते हैं सब। देखा नहीं जाता कि पति प्रमुख और पत्नी प्रधान। चाहते हैं कि तुम द्वार-द्वार डोलो। लोंडे-लपाड़े हँसी-ठट्ठा करें। लोगों को कहने का मौका मिले कि रनवीर की घरवाली पराये मर्दों के बीच—”

आपको याद होगा मास्साब, जिस दिन मैं प्रधान बनी थी, उस दिन आपने एक छोटी-सी चिट्ठी लिखी थी मेरे नाम। उसमें मेरे सुखद भविष्य की, मेरे पति-परायण होने की कामना की थी आपने। साथ ही नया सूरज ढूँढ़ने की आस जगाई थी।

संबंधों को जीतने की चुनौती भेजी थी। लिखा था, बसुमती, अपने आँगन में सत्य के खम्भे गाड़कर ईमानदारी की छान डालो कि दीन, दलित, त्रस्त, अभिशप्त छाँह पा सकें। यह कहाँ तक सम्भव हो पाता है, आप भी जानते होंगे।

लेकिन आपकी उस लिखावट ने मुझे विचलित अवश्य कर दिया। मैं भूल गयी मास्साब, कि पदवी प्राप्त आदमी छल-बल और आतंक से जिस प्रजा का दमन करता है, उससे मैं अलग नहीं हूँ।

काश, मैं ईसुरिया होती। आढ़-मर्यादा की दीवारों के बाहर मुक्त आकाश तले। कुलीन कही जाने वाली थोथी परम्पराओं के भरम से परे।

काश! रनवीर के पास अभिजात्य की तुरप चाल न होती तो परों को बीघता हुआ यह पिंजड़ा मैं साथ ही उड़ा ले जाती।

भोर होने लगी थी शायद। पंछियों की चिचियाहट सुनकर मैं उठ बैठी। यद्यपि देह में निद्रा और सुस्ती के लक्षण न थे फिर मन मार निरस्तता के चलते रोम-रोम अनमना था।

चौका-चूल्हा लीप-पोत दिया। कंडे सुलगा दिये।

रनवीर को कुल्ला-दातुन से पहले चाय पीने की आदत बन गयी है।

चाय डालकर कप-प्लेट भीतर ले जा रही थी कि दरवाजे की ओर से आती चीख-चिंघाड़ आँगन में मँडराने लगी।

“ओ रन्ना की दुलहन! ओ बसुमतियाSS...”

“अरी बाहिर तो आSS...”

“विरथा है तेरी विद्या! खाक है तेरी पढ़ाई! और राख हो गयी तेरी पिरधानी!”

यह कातर करुण स्वर!

यह रोदन की लय में छटपटाती ईसुरिया!

विलापात्मक करुणा सनी प्रकम्पित आवाज...! हाथ में थमा प्याला थरथराने लगा। न जाने क्या हो पड़ा।

“अरी जल्दी आ जा! बड़े पीपरा तरें कुआँ में कूद के हरदेई ने पिरान तज दिये।” मैं काठ हो गयी।

उलटी तरफ भागने लगी — रनवीर के कमरे की ओर। टाँगें काँप रही थीं। साँसों में अवरोध टकरा रहा था।

विश्वास नहीं हो रहा था, पर भीतर ही भीतर कोई अदृश्य, अस्पष्ट बसूला आत्मा को छीलने में लगा था।

रनवीर बिस्तर पर नहीं थे।

देह शिला से भी भारी होने लगी। पाँव गतिहीन...। निढाल हुई आँगन में ही बैठ गयी।

किसने उलट दिया निर्णय? रात ही रात में सब कुछ विपरीत कैसे हो गया? पंचों का फैसला रद्द किसने किया? किसने रोका उसे पति के संग जाने से?

ईसुरिया ने मुझे कंधों से झकझोर डाला, "अब बैठी ही रहेगी! आखिरी समय मुख तो हेर ले! हरदेई तुझे वोट देने गयी थी। झल्लूस में झंडा उठाके चली थी तेरे नाम का।"

हाँ, उसकी अनोखी आनबान वाली छवि आँखों में तिर आयी — "बसुमती देवी जिन्दाबाद! बसुमती भाभी अमर रहें!"

ईसुरिया का शोकगीत थमा न था, "अच्छा होता बसुमती, हम अपना वोट काठ की लठिया को दे आते, निरजीव लकड़ी को! उठाये उठती तो। बैरी पर वार तो करती। अतीचालों के विरोध में पड़ती। पर रनवीर की दुलहन, तुम तो बड़े घर की बहू ही रही। पिरमुख जी की पतनी। घूँघट में लिपटी पुतरिया-सी चलती रही, आँखें मूँद के।"

पीपल तले पहुँची।

वहाँ भी क्या हुआ? क्या होना था?

दरोगा, सिपाही और रनवीर, गाँव के मुँह देखा लोग, विराजमान थे वहाँ।

हरदेई के पिता के रोदनमय बयानों पर पुलिसिया कलम चल रही थी— "दहेज के लोभी पति से मार-पीट हुई थी, रात के समय। उसकी बिगड़ी हुई आदतों के चलते हम अपनी बेटी को नहीं भेजते थे उसके साथ। पर होनी को नहीं टाल पाये, दरोगा जी! पिरान खो दिये मेरी हरदेई ने। माँ बेहोस पड़ी है घर में।"

ईसुरिया विक्षिप्तों की तरह आगे को भागी, दहाड़ मारकर कहने लगी, "ओ दरोगा जी SS असल बात तो—"

रनवीर ने बात बीच में ही रोक ली, "अरे! कहाँ भागे जा रही है तू? न्याय मिलेगा। उस हत्यारे को फाँसी न करवाई तो नाम रनवीर नहीं। जा घर। बसुमती को लिवा जा।" पंचनामा कराके दरोगा जी की जीप में रनवीर सादर बैठे चले गये।

पीछे गर्द-गुबार, धुंध में लिपटे लोग त्राहि-त्राहि करते अपने-अपने घरों को लौट लिये।

लौटकर अपने आँगन में, मैं संतप्त औरतों के बीच बैठी रही। लग रहा था जैसे इसी घर से अर्थी उठी हो।

अनेक अनबूझ प्रश्न अटक के थे, आसपास थकी-पथराई आँखों में। पति-पत्नी के पुण्य-पावन संबंध के नीचे विचलित खगी और शक्तिमान अहेरी का संगमन...

क्या औरतें पहचानती थीं अहंकारात्मक आत्मीयता को? नहीं तो वे मूक-बधिर

सी उठकर क्यों चली गयीं?

प्रश्न, न कोई प्रतिप्रश्न!

समय बीतता गया। प्रमुख का चुनाव आ गया।

रनवीर फिर प्रत्याशी थे।

उन्हें दम लेने की फुरसत नहीं थी इन दिनों। मेरे पास भी घर भीतर का काम बहुत अधिक था। सुबह से जला चूल्हा रात तक ही बुझ पाता। फिर भोजन के अतिरिक्त खाट-बिस्तरों का प्रबंध।

आवाजाही के चलते ब्याह-सा मचा था घर में।

रनवीर कहते हैं, गाँव का आदमी इतना भोला नहीं, जितना समझा जाता है। फिर वह, जो राजनीति के चक्रव्यूह भेद चुका हो, वह पारंगत तो शहरी नेताओं को पटखनी खिला दे।

एक-एक प्रधान का नखरा साधना था रनवीर को।

मेरे ख्याल से तहसील-भर के प्रधानों ने हमारे घर आकर जुहार किया रनवीर को। चर्चा तो यहाँ तक हुई कि अबकी बार रनवीर, प्रमुख के बाद एम.एल.ए. के लिए खड़े होंगे।

ठीक बात थी। रनवीर बड़े चतुर हैं। बोतल-बीड़ी के निखालिस आधार पर नहीं टिकते। दुआ-सलाम में तो कतई भरोसा नहीं है उनका।

आफत-विपद में काम आने वाले आदमी ठहरे।

दरियापुर वाले इसीलिए उनसे बाहिर नहीं हो सके। हालाँकि विपक्ष में खड़ा प्रत्याशी उनका रिश्तेदार ठहरा। कारण था, उनको ग्राह के फन्दे से भगवान् की तरह छुड़ा लाये थे रनवीर। नहीं तो बहू ने तो स्पष्ट बयान दिये थे कि बीस हजार नकद दहेज के कारण जलाया है मुझे

बाप-बेटा फाँसी के फन्दे पर लटक गये होते, या फिर आजन्म कारावास। रनवीर की कृपा से ही तुर्रदार साफे का गरूर बरकरार है।

हवा इस तरह की चली कि तीन प्रत्याशी चुनाव के पहले ही घुटने टेक गये। मैदान में केवल एक बचा, वह भी लुहार का लड़का।

नादान था शायद।

रनवीर सुबह ही चले गये।

मेरे लिए शाम को जीप भिजवा दी।

घर का काम था कि सिमटने में ही न आता था। बस किसी तरह पहुँच गयी।

वैसे न भी जाती तो भी क्या अन्तर पड़ता! मैंने तो यही कहा था रनवीर से। वे

ही नहीं माने। कहने लगे, लोग हँसेंगे कि प्रमुख जी की पत्नी प्रधान हैं और वोट देने नहीं आयीं।

वोट डालकर लौट आयी।

रनवीर रात के समय लौटे थे।

जीप की सर्चलाइट देखते ही गाँव के लोग दरवाजे की ओर जुड़ आये।

रनवीर सीधे बैठक में आ गये। वे बहुत थके हुए थे, माथे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा रही थीं।

पानी लेकर पास जा पहुँची।

वे चुप थे।

लोग उन्हें अस्वस्थ-से देखकर इधर-उधर हो गये।

एकान्त में माथे पर हाथ फेरा तो वे अधिक गम्भीर हो उठे। चेहरा दयनीय हो आया।

थोड़ी देर में ही वे रेत में पड़ी मछली-से तड़पने लगे। समझने को कुछ शेष नहीं था मास्साब, मैं पराजय पर सांतवना देने लगी, "धीरज रखो। कोशिश करना तुम्हारा काम था, हार-जीत तो लगी रहती है।"

दिलासा तो दे रही थी लेकिन मेरा मन भी रूँध-खुँद गया। कभी उनके हाथ सहलाती, कभी पाँव दबाती। भीतर से कुंडी बन्द कर ली।

मास्साब, यह लिखने की बात नहीं है, पति को धीरज देने का हर सम्भव प्रयत्न किया था मैंने। मन से मन और देह से देह मिलाकर ताप हरना चाह रही थी उनका।

वे एकालाप में डूबे थे, "वे कौल, वे करार, वह गंगाजली उठाकर सौगन्ध खाना सब भ्रम था बसुमती?"

"कि धोखा?"

उन्हीं अन्तरंग क्षणों में बाहर बतियाता देववीर का स्वर मेरे कानों पर हावी हो गया, "अगर एक बोट और होता तो भइया हारते नहीं। उस लुहरटा के बराबर आ जाते।"

एक बोट!

विश्वास नहीं कर सकी मैं।

सहसा मेरे भीतर सब कुछ डॉवाडोल होने लगा।

ओ मेरे अग्नि देवता! ओ सप्तपदी दिलाने वाले महापंडित! ओ मेरे जननी-जनक!

और मास्साब आप, मेरे गुरुवर...आपने मुझे सुख-दुःख की सहभागिनी, अर्द्धांगिनी, सहचरी बनाकर रनवीर की पत्नी के रूप में विदा किया था।

लेकिन मैं क्या करती?

अपने भीतर की ईसुरिया को नहीं मार सकी।

क्षमा करना।

आपकी—बसुमती।

सिस्टर

डोरोथी डिसूजा।

अस्पताल में नर्स थीं।

कुछ महिने पहले ही रिटायर हुई हैं।

रंग से साँवली, कद-काठी से मँझोली और तनिक भारीपन की ओर जाती देह की स्वामिनी सिस्टर डिसूजा आजन्म कुँआरी हैं।

अब इंजेक्शन लगाने का काम प्राइवेट तौर पर करती हैं। अस्पताल जाकर पोलियो वैक्सीन, डी. पी. टी. के टीके वगैरह बच्चों को दिलवाती हैं।

कड़कती ठंड है आजकल। हवाएँ तीर की तरह चुमती हैं।

झीनी और मैली धोती में सिकुड़ी जमादारिन सिस्टर के द्वार से लगी बैठी है। मुट्ठी में तुड़ा-मुड़ा-सा दो का नोट बन्द है।

जैसे ही सिस्टर बाहर निकलीं, वह खड़ी हो गयी, बोली, "सिस्टर, ये तुम्हारे..

फैली हुई खुरदरी हथेली पर उस गुलाबी-से कागज को देखते ही सिस्टर ने झिड़का, "एऽऽ, घत्!"

"तो क्या बात हो गयी सिस्टर, तुम भी मेहनत करती हो। दवा मुफ्त में दे देती हो, जे ही क्या कम है?"

जमादारिन के हाथ में अब भी नोट रखा था।

सिस्टर डिसूजा ने अपने दोनों कंधों और छाती को उँगलियों से छुआ, "मदद के बदले पइसा लेगा हम। ईशु हमारे सिन को मुआफ नहीं करेगा। ओ आलमाइटी मॉड!"

बुद्धापे की ओर बढ़ती हुई सिस्टर डिसूजा अब भी उसी तरह यूनीफार्म में रहती हैं, जैसे वे अस्पताल में ड्यूटी पर जाया करती थीं।

उन्हें यकायक ध्यान हो आया, महरी कह रही थी, सुरेश चन्द ने बुलाया है, आज ही।

सामने वाले चार घर छोड़कर सुरेश चन्द का मकान है। वे अपने परिवार के साथ पिछले साल किराये पर रहने आये हैं।

पड़ोसिन बता रही थी, कॉलेज में पढ़ाते हैं।

महरी कहती है, बहुत बीमार रहे हैं बेचारे। अस्पताल में भर्ती रहकर आये हैं। स्वभाव